आस्तिक और नास्तिक

बहुत प्राचीन कालमें जब आर्य ऋषियोंने पुनर्जन्मकी शोध की, तब पुनर्जन्मके विचारके साथ ही उनके मनमें कर्मके नियम और इहलोक तथा परलोककी कल्पना भी आविर्भूत हुई। कर्मतत्त्व, इहलोक और परलोक इतना तो पुनर्जन्मके साथ सम्बन्धित है ही। यह बात एकदम सीधी सादी और सहज ही सबके गले उतर जाय, ऐसी नहीं है। इसलिए इसके बारेमें थोड़ा बहुत मतभेद हमेशा रहा है। उस पुराने जमानेमें भी एक छोटा या बड़ा वर्ग ऐसा था जो पुनर्जन्म और कर्मचक्रके माननेको बिल्कुल तैयार न था। यह वर्ग पुनर्जन्मवादियोंके साथ समय समयपर चर्चा भी करता था। उस समय पुनर्जन्मके शोधकों और पुनर्जन्मवादी ऋषियोंने अपने मन्तव्यको न माननेवाले पुनर्जन्मविरोधी पक्षको नास्तिक कहा और अपने पक्षको आस्तिक। इन गंभीर और विद्वान् ऋषियोंने जब अपने पक्षको आस्तिक कहा, तब उसका अर्थ केवल इतना ही था कि हम पुनर्जन्म और कर्मतत्त्वको माननेवाले पक्षके हैं और इसलिए जो पक्ष इन तत्त्वोंको नहीं मानता उसको सिर्फ हमारे पक्षसे भिन्न पक्षके तौरपर व्यक्त करनेके लिए 'न' शब्द जोड़कर कहा गया। ये समभावी ऋषि उस समय आस्तिक और नास्तिक इन दो शब्दोंका केवल दो भिन्न पक्षोंको सूचित करनेके लिए ही व्यवहार करते थे। इससे ज्यादा इन शब्दोंके व्यवहारके पीछे कोई खास अर्थ नहीं था। पर ये शब्द खूब चले और सबको अनुकूल साबित हुए। बादमें ईश्वरकी मान्यताका प्रश्न आया। ईश्वर है और वह संसारका कर्त्ता भी है, ऐसा माननेवाला एक पक्ष था। दूसरा पक्ष कहता था कि स्वतन्त्र और अलग ईश्वर जैसा कोई तत्त्व नहीं है और हो भी तो सर्जनके साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। ये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दो पक्ष और उनकी अनेक शाखाएँ जब अस्तित्वमें आईं तो पहले जो आस्तिक और नास्तिक शब्द सिर्फ पुनर्जन्मवादी और पुनर्जन्मविरोधी पक्षोंके लिए ही प्रयुक्त होते थे, वे ही ईश्वरवादी और ईश्वर-विरोधी पक्षोंके लिए भी व्यवहारमें आने लगे। इस प्रकार आस्तिक और नास्तिक शब्दोंके अर्थका क्षेत्र पुनर्जन्मके अस्तित्व और नास्तित्वकी अपेक्षा अधिक विस्तृत यानी ईश्वरके अस्तित्व और नास्तित्व पर्यन्त हो गया। फिर पुनर्जन्म माननेवाले वर्गमें भी ईश्वरको मानने और न माननेवालोंके दो पक्ष हो गये, अर्थात् अपने आपको आस्तिक समझनेवाले आचार्योंके सामने ही उनकी परंपरामें दो भिन्न पार्टियाँ हो गईं। उस समय पुनर्जन्मवादी होनेके कारण आस्तिक गिने जानेवाले वर्गके लिए भी ईश्वर न माननेवाले लोगोंको नास्तिक कहना आवश्यक हो गया। परन्तु तब इन शब्दोंमें अमुक बात माननी या अमुक न माननी, इसके सिवाय कोई दूसरा खास भाव नहीं था। इसलिए पुनर्जन्मवादी आर्य पुरुषोंने अपने ही पक्षके किन्तु ईश्वरको नहीं माननेवाले अपने बन्धुओंको, वे कुछ मान्यता भेद रखते हैं इस बातकी सूचनाके लिए ही, नास्तिक कहा। इसी तरह सांख्य, मीमांसक, जैन और बौद्ध ये सब पुनर्जन्मवादीके नाते समानरूपसे आस्तिक होते हुए भी दूसरी तरहसे नास्तिक कहलाये।

अब एक दूसरा प्रश्न खड़ा हुआ और वह था शास्त्रके प्रमाणका। वेदशास्त्रकी प्रतिष्ठा रूढ़ हो चुकी थी। पुनर्जन्मको माननेवाला और ईश्वर तत्त्वको भी माननेवाला एक ऐसा बड़ा पक्ष हो गया था जो वेदका प्रामाण्य पूरा पूरा मंजूर करता था। उसके साथ ही एक ऐसा भी बड़ा और प्राचीन पक्ष था जो पुनर्जन्ममें विश्वास रखते हुए भी और वेदका पूरा पूरा प्रामाण्य स्वीकार करते हुए भी ईश्वर तत्त्व नहीं मानता था। यहाँसे आस्तिक नास्तिक शब्दोंमें बड़ा भारी गोटाला शुरू हो गया। अगर ईश्वरको माननेसे किसीको नास्तिक कहा जाय, तो पुनर्जन्म और वेदका प्रामाण्य माननेवाले अपने सगे भाई मीमांसकको भी नास्तिक कहना पड़े। इसलिए मनु महाराजने इस जटिल समस्याको सुलझानेके लिए नास्तिक शब्दकी एक संक्षिप्त व्याख्या कर दी और वह यह कि जो वेद-निंदक हो वह नास्तिक कहा जाय। इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिसाबसे सांख्य लोगोंको जो निरीश्वरवादी होनेके कारण एक बार नास्तिक गिने जाते थे, वेदोंका कुछ अंशोंमें प्रामाण्य स्वीकार करनेके कारण धीरे धीरे नास्तिक कहा जाना बन्द हो गया और वे आस्तिक गिने जाने लगे और जैन तथा बौद्ध जो वेदका प्रामाण्य बिल्कुल नहीं स्वीकारते थे, नास्तिक। यहाँ तक तो आस्तिक नास्तिक शब्दोंके प्रयोगके बारेमें चर्चा हुई।

अब दूसरी तरफ देखिए। जिस प्रकार पुनर्जन्मवादी, ईश्वरवादी और वेदवादी लोग अपनेसे जुदा पक्षको बतलानेके लिए नास्तिक शब्दका व्यवहार करते थे—और व्यवहारमें कुछ शब्दोंका प्रयोग तो करना ही पड़ता है—उसी तरह भिन्न पक्ष-वाले भी अपने और अपने प्रतिपक्षीको सूचित करनेके लिए अमुक शब्दोंका व्यवहार करते थे। वे शब्द थे सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि। पुनर्जन्मको मानते हुए भी कुछ विचारक अपने गहरे चिन्तन और तपके परिणामसे यह पता लगा सके थे कि ईश्वर जैसी कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है। इसलिए उन्होंने अधिकसे अधिक विरोध और जोखिम सहन करके भी अपने विचार लोगोंके सामने रखे। इन विचारोंको प्रकट करते समय अन्तमें उन्हें वेदोंके प्रामाण्यके स्वीकारसे भी इन्कार करना पड़ा। ये लोग समझते थे और सच्ची प्रामाणिक बुद्धिसे समझते थे कि उनकी दृष्टि अर्थात् मान्यता सम्यक् अर्थात् सच्ची है और दूसरे वेदवादी पक्षकी मान्यता मिथ्या अर्थात् भ्रान्त है। सिर्फ इसीलिए समभावपूर्वक उन्होंने अपने पक्षको सम्यग्दृष्टि और सामनेवालेको मिथ्यादृष्टि बतलाया। इसी भाँति जैसे संस्कृतजीवी विद्वानोंने अपने पक्षके लिए आस्तिक और अपनेसे भिन्न पक्षके लिए नास्तिक शब्द योजित किये थे उसी तरह प्राकृतजीवी जैन और बौद्ध तपस्वियोंने भी अपने पक्षके लिए सम्यग्दृष्टि (सम्मादिट्ठी) और अपनेसे भिन्न पक्षके लिए मिथ्यादृष्टि (मिच्छादिट्ठी) शब्द प्रयुक्त किये। पर इतनेसे ही अन्त आनेवाला थोड़े ही था। मतों और मतभेदोंका वटवृक्ष तो समयके साथ ही फैलता जाता है। जैन और बौद्ध दोनों वेदविरोधी होते हुए भी उनमें आपसमें भी बड़ा मतभेद था। इसलिए जैन लोग भी अपने ही पक्षको सम्यग्दृष्टि कहकर वेदका प्रामाण्य नहीं स्वीकार करनेमें सगे भाई जैसे अपने बौद्ध मित्रको भी मिथ्यादृष्टि कहने लगे। इसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तरह बौद्ध लोग भी सिर्फ अपनेको ही सम्यग्दृष्टि और अपने बड़े भाईके समान जैन पक्षको मिथ्यादृष्टि कहने लगे। सचमुचमें जिस तरह आस्तिक और नास्तिक उसी तरह सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि शब्द भी केवल अमुक अंशमें भिन्न मान्यता रखनेवाले दो पक्षोंके लिए प्रयुक्त होते थे, जिनमें एक स्वपक्ष और दूसरा परपक्ष होता था। प्रत्येक अपने पक्षको आस्तिक और सम्यग्दृष्टि कहता और परपक्षको नास्तिक और मिथ्यादृष्टि। यहाँ तक तो सामान्य भाव हुआ, पर मनुष्यकी प्रकृतिमें जैसे मीठापन है वैसे ही कड़ुआपनका तत्त्व भी है। यह तत्त्व प्रत्येक जमानेमें थोड़ा बहुत देखा ही जाता है। शब्द अपने आपमें किसी तरह भले या बुरे नहीं होते। उनके मिठास या कड़ुएपन अथवा उनकी प्रियता या अप्रियताका आधार उनके पीछे विद्यमान मनोभावोंपर अवलम्बित रहता है। यह बात हम कुछ उदाहरणोंद्वारा ज्यादा स्पष्ट रीतिसे समझ सकेंगे। पहले हम नंगा, लुच्चा और बाबा —इन शब्दोंको लें और इनपर विचार करें। नंगा या नागा संस्कृतमें नग्न और प्राकृतमें नगिण, लुच्चा संस्कृतमें लुंचक और प्राकृतमें लुंचओ, बाबा संस्कृतमें वप्ता और प्राकृतमें वप्पा अथवा बप्पा रूपसे प्रसिद्ध है।

जो सिर्फ कुटुम्ब और सम्पत्तिका ही नहीं परन्तु कपड़ों तकका त्याग करके आत्म-शोधनके लिए निर्भय व्रत धारण करता और महान् आदर्श सामने रखकर जंगलमें एकाकी सिंहकी तरह विचरण करता था वह पुण्य पुरुष नग्न कहलाता था। भगवान् महावीर इसी अर्थमें नग्न नामसे प्रख्यात हुए हैं। परिग्रहका त्याग करके और देह-दमनका व्रत स्वीकार करके आत्म-साधनाके लिए ही त्यागी होनेवाले और अपने सिरके बालोंको अपने ही हाथोंसे खींच निकालनेवालेको लुंचक या लोच करनेवाला कहा जाता था। यह शब्द शुद्ध त्याग और देह-दमन सूचित करनेवाला था। वप्ता अर्थात् सर्जक और सर्जक अर्थात् बड़ा और संततिका पूज्य। इस अर्थमें बप्पा और बाबा शब्दका प्रयोग होता था। परन्तु शब्दोंके व्यवहारकी मर्यादा हमेशा एक समान नहीं रहती। उसका क्षेत्र छोटा, बड़ा और कभी कभी विकृत भी हो जाता है। नग्न अर्थात् वस्त्ररहित तपस्वी और ऐसा तपस्वी जो सिर्फ एक कुटुम्ब या एक ही परिवारकी जवाबदारी छोड़कर वसुधा-कुटुम्बी बननेवाला और सारे विश्वकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जवाबदारियोंका विचार करनेवाला हो। परन्तु कितने ही मनुष्य कुटुम्बमें ऐसे निकल आते हैं जो कमजोरीके कारण अपनी कौटुम्बिक जवाबदारीको फेंककर उसकी जगह बड़ी और व्यापक जवाबदारी लेनेके बदले आलस्य और अज्ञानके कारण अपने कुटुम्ब और अपने समाजके प्रति गैर-जिम्मेदार होकर इधर उधर भटकते रहते हैं। ऐसे मनुष्यों और पहले बताये हुए उत्तरदायी नग्न तपस्वियोंके बीच घरसम्बन्धी गैरजिम्मेदारी और घर छोड़कर इच्छा-पूर्वक घूमने जितनी ही समानता होती है। इस साम्यके कारण उन गैरजिम्मेदार मनुष्योंको उनके रिश्तेके लोगोंने ही तिरस्कारसूचक तरीकेसे या अपनी अरुचि दर्शानेके निमित्त उनको नंगा या नागा (नग्न) कहा। इस तरहसे व्यवहारमें जब कोई एक जवाबदारी छोड़ता है, दिया हुआ वचन पूरा नहीं करता, अपने सिरपर रखा हुआ कर्ज नहीं चुकाता और किसीकी सुनता भी नहीं, तब, उस हालतमें वह तिरस्कार और अरुचिसूचक शब्दोंमें नंगा या नग्न कहता है।

इस तरह धीरे धीरे पहलेवाला मूल नग्न शब्द अपने महान् तप, त्याग और पूज्यताके अर्थमेंसे निकलकर सिर्फ गैरजिम्मेवार अर्थमें आकर रुक गया और आज तो वह ऐसा हो गया है कि कोई भी व्यक्ति अपने लिए नंगा शब्द पसंद नहीं करता। दिगंबर भिक्षुक जो बिल्कुल नग्न होते हैं, उनको भी अगर नंगा कहा जाय, तो वे अपना तिरस्कार और अपमान समझेंगे। लुंचक शब्दने भी अपना पवित्र स्थान खो दिया है। कहे हुएका पालन न करे, दूसरोंको ठगे, बस इतने ही अर्थमें उसका उपयोग रह गया है। बाबा शब्द तो बहुत बार बालकोंको डरानेके लिए ही प्रयुक्त होता है और अक्सर जो किसी प्रकारकी जिम्मेदारीका पालन नहीं करता उस आलसी और पेटू मनुष्यके लिए भी प्रयुक्त होता है। इस तरह भलाई या बुराई, आदर या तिरस्कार, संकुचितता या विस्तृतताके भावको लेकर एक ही शब्द कभी अच्छे, कभी बुरे, कभी आदरसूचक, कभी तिरस्कारसूचक, कभी संकुचित अर्थवाले और कभी विस्तृत अर्थवाले हो जाते हैं। ये उदाहरण प्रस्तुत चर्चामें बहुत कामके होंगे।

ऊपर कहे हुए नास्तिक और मिथ्यादृष्टि शब्दोंकी श्रेणीमें दूसरे दो शब्द भी सम्मिलित किये जाने योग्य हैं। उनमें एक ' निन्हव ' शब्द है जो श्वेताम्बर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शास्त्रोंमें व्यवहृत हुआ है और दूसरा 'जैनाभास' शब्द है जो दिगम्बर ग्रंथोंमें प्रयुक्त हुआ है। ये दोनों शब्द अमुक अंशमें जैन किन्तु कुछ बातोंमें विरोध मत रखनेवालोंके लिए प्रयुक्त हैं। निन्हव शब्द तो कुछ प्राचीन भी है परन्तु जैनाभास अर्थात् 'कृत्रिम जैन' शब्द बहुत पुराना नहीं है और विलक्षण रीतिसे इसका प्रयोग हुआ है। दिगम्बर शाखाकी मूलसंघ, माथुरसंघ, काष्ठासंघ आदि अनेक उपशाखाएँ हैं। उनमें जो मूलसंघके न हों ऐसे सभी व्यक्तियोंको जैनाभास कहा गया है, जिनमें श्वेताम्बर भी आ जाते हैं। श्वेताम्बर शास्त्रकारोंने भी प्राचीन कालमें तो अमुक मतभेदवाले अमुक पक्षको ही निन्हव कहा था परन्तु बादमें जब दिगम्बर शाखा बिल्कुल अलग हो गई, तो उसको भी निन्हव कहा जाने लगा। इस तरहसे हम देख सकते हैं कि दो मुख्य शाखाएँ—श्वेताम्बर और दिगम्बर—एक दूसरीको भिन्न शाखाके रूपमें पहचाननेके लिए अमुक शब्दका प्रयोग करती हैं। जब एक ही शाखामें उपभेद होने लगते हैं तो उस समय भी एक उपसम्प्रदाय दूसरे उपसम्प्रदायके लिए इन्हीं शब्दोंका व्यवहार करने लगता है।

इस अवसरपर हम एक विषयपर लक्ष्य किये बिना नहीं रह सकते कि आस्तिक और नास्तिक शब्दोंके पीछे तो सिर्फ हकार और नकारका ही भाव है जब कि सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि शब्दोंके पीछे उससे कहीं ज्यादा भाव है। इनमें अपना यथार्थपन और दूसरे पक्षका भ्रान्तपन विश्वासपूर्वक सूचित किया जाता है। यह भाव जरा उग्र और कुछ अंशमें कटु भी है। इसलिए पहलेवाले शब्दोंकी अपेक्षा बादके शब्दोंमें विशेष उग्रता सूचित होती है। फिर ज्यों ज्यों सांप्रदायिकता और मतांधता बढ़ती गई त्यों त्यों कटुता ज्यादा उग्र होती गई और उसके परिणामस्वरूप निन्हव और जैनाभास जैसे उग्र शब्द प्रतिपक्षके लिए अस्तित्वमें आ गये। यहाँ तक तो सिर्फ इन शब्दोंका कुछ इतिहास आया। अब हमको वर्तमान स्थितिपर गौर करना चाहिए।

आज कल इन शब्दोंके बारेमें बहुत गोटाला हो गया है। ये शब्द अपने मूल अर्थमें नहीं रहे और नये अर्थमें भी ठीक और मर्यादित रीतिसे व्यवहारमें नहीं आते। सच कहा जाय तो आजकाल ये शब्द नंगा, लुच्चा और बाबा शब्दोंकी तरह सिर्फ गालीके तौरपर अथवा तिरस्कार रूपमें हर कोई व्यवहार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करता है। सच्ची बात कहनेवाले और भविष्यमें जो विचार हमको या हमारी सन्ततिको अवश्यमेव स्वीकार करने योग्य होते हैं, उन विचारोंको प्रकट करने वाले मनुष्यको भी शुरू शुरूमें रूढ़िगामी, स्वार्थी और अविचारी लोग नास्तिक कहकर गिरानेका प्रयत्न करते हैं। मथुरा-वृन्दावनमें मन्दिरोंकी संख्या बढ़ाकर उनकी पूजाद्वारा पेट भरनेवाले और अनाचारको पुष्ट करनेवाले पंडों या गुसाईयोंके पाखण्डका स्वामी दयानंद-ने विरोध किया और कहा कि यह तो मूर्ति-पूजा नहीं वरन् उदर-पूजा और भोग-पूजा है। काशी तथा गयामें श्राद्ध आदि कराकर मस्त रहनेवाले और अत्याचारका पोषण करनेवाले पंडोंसे स्वामीजीने कहा—यह श्राद्ध-पिण्ड पित-रोंके तो नहीं पर तुम्हारे पेटोंमें जरूर पहुँचता है। ऐसा कहकर जब उन्होंने समाजमें सदाचार, विद्या और बलका वातावरण पैदा करनेका प्रयत्न किया, तब वेद-पुराणको माननेमाले पंडोंके पक्षने स्वामीजीको नास्तिक कहा। इन लोगोंने यदि स्वामीजीको सिर्फ अपनेसे भिन्न मत-दर्शकके अर्थमें ही नास्तिक कहा होता, तो कोई दोष नहीं था किन्तु जो पुराने लोग मूर्ति और श्राद्धमें ही महत्त्व मानते थे उनको उत्तेजित करनेके लिए और उनके बीचमें स्वामीजीकी प्रतिष्ठा घटानेके लिए ही उन्होंने नास्तिक शब्दका व्यवहार किया। इसी तरह मिथ्या-दृष्टि शब्दकी भी कदर्थना हुई है। जैन वर्गमें ज्यों ही कोई विचारक निकला और उसने किसी वस्तुकी उचित-अनुचितताका विचार प्रकट किया कि स्वार्थप्रिय वर्गने उसको मिथ्यादृष्टि कहा। एक यति कल्पसूत्र पढ़ता है और लोगोंसे उसकी पूजा कराकर जो दान-दक्षिणा पाता है उसे स्वयं ही हजम कर लेता है और दूसरा यति मंदिरकी आमदनीका मालिक हो जाता है और उससे अना-चार बढ़ाता है, यह देखकर जब कोई उसकी अयोग्यता प्रकट करनेको उद्यत होता है तो शुरूमें स्वार्थी यतियों ही उस विचारकको अपने वर्गमेंसे निकाल देनेके लिए मिथ्यादृष्टि तक कह डालते हैं। इस तरह शुरू शुरूमें नास्तिक और मिथ्या-दृष्टि शब्द सुधारक और विचारक लोगोंके लिए व्यवहारमें आने लगे और अब वे ऐसे स्थिर हो गये हैं कि अधिकांशतः विचारशील सुधारक और किसी वस्तुकी योग्यता-अयोग्यताकी परीक्षा करनेवालेके लिए ही व्यवहृत होते हैं। "पुराने प्रतिबन्ध, पुराने नियम, पुरानी मर्यादाएँ और पुराने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रीति-रिवाज, देश, काल और परिस्थितिको देखते हुए अमुक अंशमें उचित नहीं जान पड़ते। उनके स्थानमें अमुक-प्रकारके प्रतिबन्ध और अमुक प्रकारकी मर्यादाएँ रखी जायँ, तो समाजको लाभ हो सकता है। अज्ञान और संकुचितताकी जगह ज्ञान और उदारता स्थापित हो, तब ही समाज सुखी रह सकता है। धर्म अगर विसंवाद बढ़ाता है तो वह धर्म नहीं हो सकता।" ऐसी सरल और सर्वमान्य बातें करनेवाला कोई निकला कि तुरन्त उसको नास्तिक, मिथ्यादृष्टि और जैनाभास कहना शुरू कर दिया जाता है। इस तरह शब्दोंके उपयोगकी इस अंधाधुंधीका परिणाम यह हुआ है कि आजकल नास्तिक शब्दकी ही प्रतिष्ठा बढ़ गई है। एक जमानेमें राजमान्य और लोकमान्य शब्दोंकी ही प्रतिष्ठा थी। जब समाज आगे बढ़ा तो उसे राजमान्य शब्द खटका और राजमान्य होनेमें कई बार समाजद्रोह और देशद्रोह भी मालूम हुआ। और राजद्रोह शब्द जो एक समय बड़े भारी अपराधीके लिए ही व्यवहारमें आता था और अपमानसूचक समझा जाता था उसकी प्रतिष्ठा बढ़ गई। आज तो देश और समाजमें ऐसा वातावरण पैदा हो गया है कि राजद्रोह शब्द पूजा जाता है और अपनेको राजद्रोही कहलानेके लिए हजारों ही नहीं वरन् लाखों स्त्री-पुरुष निकल पड़ते हैं और लोग उनका सत्कार करते हैं। सिर्फ हिन्दुस्तानका ही नहीं परन्तु सारी दुनियाका महान् सन्त आज एक महान् राजद्रोही गिना जाता है। इस तरह नास्तिक और मिथ्यादृष्टि शब्द जो किसी समय केवल अपनेसे भिन्न पक्षवालेके लिए व्यवहारमें आते थे और पीछे कुछ कदर्थक भावमें आने लगे थे आज प्रतिष्ठित हो रहे हैं। "अछूत भी मनुष्य है। उससे सेवा लेकर तिरस्कार करना बड़ा भारी अपराध है। वैधव्य मर्जीसे ही पालन किया जा सकता है, जबर्दस्ती नहीं।" ये विचार जब गाँधीजीने प्रकट किये तो उनको भी मनुके उत्तराधिकारी काशीके पंडितोंने पहले नास्तिक कहा और फिर मधुरशब्दोंमें आर्यसमाजी कहा और जब बछड़ेके वधकी चर्चा आई तो बहुतोंने उनको हिंसक बताया। यदि गाँधीजीने राज्यप्रकरणमें पड़कर इतनी बड़ी साम्राज्य-शक्तिका सामना न किया होता और यदि उनमें अपने विचारोंको जगद्व्यापी करनेकी शक्ति न होती, तो वे जो आज कहते हैं वही बात अंत्यजों या विधवाओंके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयमें कहते तो लोग उन्हें भारी नास्तिक और मूर्ख मानते और मनुके उत्तराधिकारियोंकी चलती तो वे उनको शूलीपर चढ़ा देते।

इस भाँति जब कट्टर प्राचीनताप्रेमियोंने आवेशमें आकर बिना विचार किये चाहे जैसे विचारक और योग्य मनुष्यको भी अप्रतिष्ठित करनेके लिए तथा लोगोंको उसके विरुद्ध उकसानेके लिए नास्तिक जैसे शब्दोंका व्यवहार किया, तब इन शब्दोंमें भी क्रान्तिका प्रवेश हो गया और इनका अर्थ-चक्र बदलनेके अतिरिक्त महत्ता-चक्र बदलने लगा और आज तो लगभग ऐसी स्थिति आ गई है कि राजद्रोहकी तरह ही नास्तिक, मिथ्यादृष्टि आदि शब्द भी मान्य होते चले जा रहे हैं। कदाचित् ये पर्याप्त रूपमें मान्य प्रमाण न हुए हों, तो भी अब इनसे डरता तो शायद ही कोई हो। उलटे जैसे अपनेको राजद्रोही कहलानेवाले बहुतसे लोग दिखाई देते हैं वैसे बहुत लोग तो निर्भयतापूर्वक अपनेको नास्तिक कहलानेमें जरा भी हिचकिचाहट नहीं करते और जब अच्छेसे अच्छे विचारकों, योग्य कार्यकर्ताओं और उदारमना पुरुषोंको भी कोई नास्तिक कहता है तब आस्तिक और सम्यग्दृष्टि शब्दोंका लोग यही अर्थ करने लगे हैं कि जो सच्ची या झूठी किसी भी पुरानी रूढ़िसे चिपके रहते हैं, उसमें औचित्य अनौचित्यका विचार नहीं करते, किसी भी वस्तुकी परीक्षा या तर्क-कसौटी सहन नहीं करते, खरी या खोटी किसी बातकी शोध किए बिना प्रत्येक नये विचार, नई शोध और नई पद्धतिसे भड़कने पर भी कालक्रमसे परवश होकर उनका स्वीकार कर लेते हैं, वे आस्तिक और सम्यग्दृष्टि हैं। इस तरह विचारक और परीक्षक या तर्कप्रधान अर्थमें नास्तिक आदि शब्दोंकी प्रतिष्ठा जमती जाती है और कदाग्रही, धर्मात्मा, आदिके अर्थमें आस्तिक आदि शब्दोंकी दुर्दशा होती देखी जाती है। उस जमानेमें जब शस्त्रसे लड़नेके लिए कुछ नहीं था तब हरेककी लड़नेकी वृत्ति तृप्त करनेका यह शाब्दिक मार्ग ही रह गया था और नास्तिक या मिथ्यादृष्टि शब्दोंके गोले फेंके जाते थे। परन्तु आज अहिंसक युद्धने जिस तरह शस्त्रोंको निष्क्रिय बना दिया है, उसी तरह नास्तिक आदि शब्दोंको, जो विषमय शस्त्रोंकी भाँति चलाये जाते थे, निर्विष और काफी मात्रामें जीवन-प्रद अमृत जैसा भी बना दिया है। यह क्रान्ति-युगका प्रभाव है। परन्तु इससे किसी विचारक या सुधारकको फूलकर अपना कर्तव्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं भूल जाना चाहिए। बहुत बार क्षुल्लक विचारक और भीरु स्वार्थी सुधारक अपनेको नास्तिक कहलानेके लिए सामनेवाले पक्षके प्रति अन्याय करने तक तैयार हो जाते हैं। उन्हें भी सावधान होनेकी आवश्यकता है। स्पष्टतः यदि कोई एक पक्षवाला आवेश या जनूनमें आकर दूसरे पक्षको सिर्फ नीचा दिखानेके लिए किसी भी तरहके शब्दका प्रयोग करता है, तो यह तात्त्विक रीतिसे हिंसा ही समझी जायगी। अपनेसे भिन्न विचारवाले व्यक्तिके लिए समभाव और प्रेमसे योग्य शब्दोंका व्यवहार करना एक बात है और रोषमें आकर दूसरेको तुच्छ बनानेके खातिर मर्यादा छोड़कर अमुक शब्दोंका व्यवहार करना दूसरी बात है। फिर भी किसी बोलनेवालेके मुँहपर ताला नहीं लगाया जाता या लिखनेवालेके हाथ बाँधे नहीं जाते। इसीसे जब कोई आवेगमें आकर भिन्न मतवालेके लिए अमुक शब्दका व्यवहार करता है तब भिन्न मतवालेका अहिंसक कर्तव्य क्या है, इसका भी हमको विचार कर लेना चाहिए।

पहला तो यह कि हमारे लिए जब कोई नास्तिक या ऐसा ही कोई दूसरा शब्द व्यवहार करे, तो इतना ही समझना चाहिए कि उस भाईने हमें केवल भिन्न-मतवाला अथवा वैसा न माननेवाला समझकर उसी अर्थमें समभाव और वस्तु-स्थितिसूचक शब्दका प्रयोग किया है। उस भाईकी उस शब्दके व्यवहार करनेमें कोई दुर्वृत्ति नहीं है, ऐसा विचार करके उसके प्रति प्रेमवृत्ति और उदारता रखनी चाहिए।

दूसरा यह कि अगर यही मालूम हो कि अमुक पक्षवालेने हमारे लिए आवेशमें आकर निन्दाकी दृष्टिसे ही अमुक शब्दका व्यवहार किया है तो यह विचार करना चाहिए कि उस भाईकी मानसिक भूमिकामें आवेश और संकुचितताके तत्त्व हैं। उन तत्त्वोंका वह मालिक है और जो जिस वस्तुका मालिक होता है वह उसका इच्छानुसार उपयोग करता ही है। उसमें अगर आवेशका तत्त्व है, तो धीरज कहाँसे आवेगा और अगर संकुचितता है तो उदारता कहाँसे प्रकट होगी? और अगर आवेश और संकुचितताके स्थानमें धैर्य और उदारता उसमें लानी है तो वह इसी तरीकेसे आ सकती है कि चाहे जितने कडुए शब्दोंके बदले भी अपने मनमें धीरता और उदारताको बनाये रखना। क्यों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि कीचड़ कीचड़से साफ नहीं किया जा सकता, वह तो पानीसे ही धोया जा सकता है।

तीसरा यह कि जब कोई हमारे मत और विचारके विरुद्ध आवेश या शान्तिसे कुछ भी कहता है तो उसके कथनपर सहानुभूतिसे विचार करना चाहिए। अगर सामनेवालेके आवेशपूर्ण कथनमें भी सत्य मालूम होता हो तो चाहे जितना प्रचण्ड विरोध होते हुए भी और चाहे जितनी जोखम उठाकर भी नम्र भावसे उसे स्वीकार करना और उसीमें दृढ़ रहना चाहिए। अगर इसी भाँति विचार और वर्तन रक्खा जायगा तो शब्दोंके प्रहार-प्रति-प्रहारका विष कम हो जायगा। भाषा-समिति और वचन-गुप्तिकी जो प्रतिष्ठा करीब करीब लुप्त होती जा रही है वह वापस जमेगी और शान्तिका वातावरण उत्पन्न होगा। इन पुण्य दिनोंमें हम इतना ही चाहें। *

[तरुण जैन, अक्टूबर १९४१]

* मूल गुजरातीमें। अनुवादक श्री भँवरमलजी सिंघी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org